राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एकलपीठ सिविल विविध अपील क्रमांक 192/2006

गीगराज पुत्र रामदेव, निवासी चायलपुरी, तहसील खेतड़ी, जिला झुंझुनू

---अपीलार्थी/वादी

बनाम

1. **नागरमल पुत्र चुन्नीलाल**, निवासी खेतड़ी, तहसील खेतड़ी, जिला झुंझुनू।
2. **जम्मन पुत्र झुंथाराम**, निवासी छैलपुरी, तहसील खेतड़ी, जिला झुंझुनू।

---प्रत्यर्थीगण

3. **कार्यकारी अधिकारी खेतड़ी** (राजस्थान) **के माध्यम से नगर पालिका खेतड़ी।**
4. अध्यक्ष, **नगर पालिका खेतड़ी**, जिला झुंझुनू,
5. निदेशक, **स्थानीय निकाय विभाग**, जयपुर।

---- प्रत्यर्थीगण

अपीलार्थी(गण) की ओर से	:	श्री मनीष शर्मा, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी (गण) की ओर से	:	श्री हर्षद कपूर, अधिवक्ता **श्री राजेश कपूर**, अधिवक्ता के लिए।

माननीय श्रीमान न्यायमूर्ति अनूप कुमार ढंड़

<u>निर्णय</u>

<u>रिपोर्टेबल</u>

<u>19/05/2022</u>

यह विविध सिविल नियमित अपील संख्या 13/ 2004 **में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश**, न्यायाधीश, **खेतड़ी द्वारा पारित दिनांक** 27.10.2005 **के आक्षेपित निर्णय के खिलाफ सिविल प्रक्रिया संहिता** (संक्षिप्त 'सीपीसी' के लिए) **के नियम** 23-क के साथ पठित आदेश 41 **नियम नियम के तहत अपील दायर की गई है जिसके द्वारा सिविल जज**, खेतड़ी, जिला, झुंझुनू

द्वारा पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 08.02.1994 को अपास्त कर दिया गया और मामला सिविल जज को भेज दिया गया कि दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद मुकदमे का नये सिरे से निर्णय करें।

आक्षेपित निर्णय से व्यथित महसूस करते हुए अपीलार्थी-वादी ने इस अपील को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर प्रस्तुत किया है कि स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मूल मुकदमा वर्ष 1984 में स्थापित किया गया था और इसे विद्वान सिविल न्यायाधीश ने दिनांक 08.02.1994 के निर्णय और मूल के माध्यम से डिक्री किया था। प्रत्यर्थीगण-प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया गया कि वे कानून की प्रक्रिया का पालन किए बिना वादी-अपीलार्थीगण को प्रश्नगत भूमि से बेदखल न करें और वैकल्पिक रूप से, यदि कानून के अनुसार अनुमति हो तो अपीलार्थीगण-वादी के कब्जे को नियमित करने का निर्देश जारी किया गया।

अपीलार्थीगण-वादी के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मूल प्रत्यर्थी दिनांक 08.02.1994 के निर्णय से संतुष्ट थे और उन्होंने अपीलीय न्यायालय के समक्ष इस पर कोई आपत्ति नहीं जताई है। इसलिए, दिनांक 08.02.1994 का निर्णय अपनी सीमा तक अंतिम रूप प्राप्त कर चुका है।

अधिवक्ता ने आगे कहा कि वर्तमान प्रत्यर्थीगण अर्थात् नागरमल और जम्मन, जो मुकदमे में पक्षकार नहीं थे, ने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश की अदालत के समक्ष सीपीसी की धारा 96 के तहत दिनांक 08.02.1994 के निर्णय के 10 वर्ष और 8 माह बाद परि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत एक आवेदन के साथ खेतड़ी, साथ ही अपील दायर करने की अनुमति मांगने वाली अपील दायर की।

विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि नोटिस जारी किए बिना या सुनवाई का अवसर दिए बिना, अपील दायर करने की अनुमति मांगने वाले आवेदन को अनुमति दी गई और 10 वर्ष 8 माह की देरी को माफ कर दिया और उसके बाद कानून के प्रावधानों के उल्लंघन में प्रत्यर्थीगण की अपील की अनुमति दी गई।

अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि अपीलीय न्यायालय ने निर्धारण के बिंदुओं को तैयार किए बिना आदेश 41 नियम 33 सीपीसी का उल्लंघन करते हुए आक्षेपित निर्णय

पारित किया है। उक्त निर्णय में, अपीलीय न्यायालय ने तीन बिंदु बनाए हैं जो प्रथम मामला, सुविधा का संतुलन और अपूरणीय क्षति हैं, जैसे कि अपीलीय न्यायालय सीपीसी के के आदेश 39 नियम 1 और 2 के तहत अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन पर निर्णय ले रहा था।

अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी नागरमल और झुंथाराम के पुत्र प्रह्लाद सिंह, जो प्रत्यर्थी संख्या 2 जम्मन के भाई हैं, ने सिविल कोर्ट के समक्ष लुका-छिपी का खेल खेलकर उसी भूमि के संबंध में एक अलग मुकदमा दायर किया जिस पर 26.04.2006 को भी यही आदेश दिया गया था।

अधिवक्ता ने आगे कहा कि उक्त निर्णय और डिक्री दिनांक 26.04.2006 के खिलाफ, अपीलार्थीगण-वादी ने एक सिविल नियमित प्रथम अपील प्रस्तुत की, जिसे 25.11.2017 को अनुमति दी गई और निर्णय और डिक्री दिनांक 26.04.2006 को अपास्त कर दिया गया और अपास्त कर दिया गया।

उन्होंने आगे कहा कि ये सभी व्यक्ति मिलीभगत में थे और उनका एकमात्र उद्देश्य वादी के पक्ष में पारित डिक्री को विफल करना था।

अंत में, अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 और प्रत्यर्थी संख्या 2 के भाई द्वारा प्रस्तुत सिविल नियमित प्रथम अपील के लंबित होने के दौरान, नगरपालिका बोर्ड, खेतड़ी, जिला, झुंझुनू ने पट्टा संख्या 557 आवंटित किया है। वादी को 05.03.2013 को और इसे किसी भी सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थीगण द्वारा चुनौती नहीं दी गई है।

विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि इन परिस्थितियों में, आक्षेपित निर्णय और डिक्री दिनांकित 27.10.2005 कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है और इसे इस न्यायालय द्वारा अपास्त किया जाए।

इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 मुकदमे में पक्षकार नहीं थे और उन्हें विद्वान सिविल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 08.02.1994 के निर्णय और डिक्री के बारे में जानकारी नहीं थी। उपरोक्त निर्णय की जानकारी मिलने के तुरंत बाद, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, खेतड़ी की अदालत के समक्ष सीपीसी की धारा 96 के तहत छुट्टी की मांग के लिए एक आवेदन और

परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत एक आवेदन के साथ नियमित प्रथम अपील प्रस्तुत की गई।

उन्होंने आगे कहा कि उचित सोच-समझ के बाद, विद्वान अपीलीय अदालत ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन की अनुमति दी और देरी को उचित रूप से माफ कर दिया और प्रत्यर्थीगण को अपील प्रस्तुत करने की अनुमति दे दी।

विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर विवाद नहीं किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 और प्रत्यर्थी संख्या 2 के भाई- प्रह्लाद सिंह ने सिविल कोर्ट के समक्ष विचाराधीन भूमि के संबंध में एक मुकदमा दायर किया था और अपीलार्थी-वादी ने 26.04.2006 को उस पर निर्णय सुनाया था। एक नियमित प्रथम अपील दायर की गई और 25.11.2017 को इसकी अनुमति दे दी गई।

उन्होंने आगे कहा कि 25.11.2017 के निर्णय के खिलाफ, प्रत्यर्थी संख्या 1 और प्रत्यर्थी संख्या 2 के भाई ने इस न्यायालय के समक्ष एकलपीठ सिविल द्वितीय अपील संख्या 118/2018 दायर की और वह निर्णय के लिए लंबित है।

अंत में, उन्होंने कहा कि अपीलीय अदालत द्वारा मुकदमे पर नए सिरे से निर्णय करते समय मामले को सिविल कोर्ट में भेजने में कोई अवैधता नहीं की गई है।

पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

यह विवाद नहीं है कि मूल वाद वादी-अपीलार्थीगण द्वारा प्रश्नगत भूमि के संबंध में नगर निगम बोर्ड, खेतड़ी के अधिकारियों और निदेशक, स्थानीय स्व बोर्ड, जयपुर के खिलाफ दायर किया गया था। मूल प्रत्यर्थीगण को सुनने के बाद, विद्वान सिविल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 08.02.1994 के निर्णय और डिक्री द्वारा मुकदमे का निर्णय सुनाया गया और प्रत्यर्थीगण को एक निर्देश जारी किया गया कि वे कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना वादी को विचाराधीन भूमि से बेदखल न करें। वैकल्पिक रूप से, यदि कानून के अनुसार अनुमति हो तो वादी के कब्जे को नियमित करने का निर्देश भी जारी किया गया था।

यह भी विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 08.02.1994 के उक्त निर्णय को चुनौति नहीं दी, जिसके कारण इसे उस सीमा तक अंतिमता प्राप्त हुई।

रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि 10 वर्ष और 8 माह की देरी से पीड़ित एक समयबाधित अपील, परिसीमन अधिनियम की धारा 5 के तहत एक आवेदन के साथ और इसके अलावा, प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 द्वारा अपीलीय अदालत के समक्ष प्रस्तुत की गई थी। प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 द्वारा सीपीसी की धारा 96 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था जिसमें अपील दायर करने की अनुमति मांगी गई थी।

दिनांक 18.10.2004 के आदेश पत्र का अवलोकन स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि बिना नोटिस जारी किए, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 और सीपीसी की धारा 96 के तहत दायर इन आवेदनों को वादी को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना अनुमति दी गई थी। अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 18.10.2004 के आदेश में एक भी कारण बताए बिना 10 वर्ष और 8 माह की भारी देरी को माफ कर दिया है।

मोतीलाल और छोटेलाल बनाम रीवा कोलफील्ड्स लिमिटेड, 1962 (2) एससीआर 762 में प्रकाशित **मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय** का अवलोकन और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

> 5 दो महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखना प्रासंगिक है। पहला विचार विचार यह है कि अपील करने के लिए निर्धारित सीमा अवधि की समाप्ति डिक्री-धारक के पक्ष में डिक्री को पक्षकारों के बीच बाध्यकारी मानने के अधिकार को जन्म देती है। दूसरे शब्दों में, जब निर्धारित परिसीमा की अवधि समाप्त हो गई है तो डिक्री-धारक ने डिक्री को चुनौती से परे मानने मानने के लिए परिसीमा के कानून के तहत एक लाभ प्राप्त कर लिया है, और यह विधिक अधिकार जो डिक्री-धारक को चूक के कारण प्राप्त हुआ है। है। दूसरा विचार जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता वह यह है कि यदि देरी को माफ करने के लिए पर्याप्त कारण दिखाया जाता है तो अदालत को देरी को माफ करने और अपील स्वीकार करने का विवेक दिया जाता है। यह विवेक जानबूझकर न्यायालय को प्रदान किया गया है ताकि पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाने के लिए न्यायिक शक्ति और विवेक का प्रयोग किया जा सके। जैसाकि मद्रास उच्च न्यायालय ने कृष्णा बनाम बनाम चट्टपन मामले में देखा है (1) "एस. 5 न्यायालय को एक

विवेकाधिकार देता है जिसका प्रयोग क्षेत्राधिकार के संबंध में उस तरीके से से किया जाना चाहिए जिसमें न्यायिक शक्ति और विवेक का प्रयोग अच्छी तरह से समझे जाने वाले सिद्धांतों पर किया जाना चाहिए; शब्द "पर्याप्त कारण' को उदारता प्राप्त होती है निर्माण ताकि पर्याप्त न्याय आगे बढ़ाया जा सके जब अपीलार्थी पर कोई लापरवाही, निष्क्रियता या सद्भावना की कमी न हो।"

इसी प्रकार, **पुंडिक जालम पाटिल बनाम कार्यकारी अभियंता, जलगांव मध्यम परियोजना (2008) 17 एससीसी 448** में प्रकाशित मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"परिसीमा के नियम सार्वजनिक नीति पर आधारित होते हैं। परिसीमा के क़ानूनों को कभी-कभी "शांति के क़ानून" के रूप में वर्णित किया जाता है। सीमा का असीमित और सतत खतरा असुरक्षा और अनिश्चितता पैदा करता है; सार्वजनिक व्यवस्था के लिए किसी प्रकार की सीमा आवश्यक है। यह सिद्धांत इस कहावत पर आधारित है "इंटरेस्ट रिपब्लिका यूट सिट फिनिस लिटियम", अर्थात, राज्य के हित के लिए आवश्यक है कि मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए, लेकिन साथ ही सीमा के कानून धोखाधड़ी को दबाने वाले निजी न्याय को सुनिश्चित करने का एक साधन हैं और झूठी गवाही देना, परिश्रम को तेज करना और उत्पीड़न को रोकना। मुकदमेबाजी के लिए समय-सीमा तय करने का उद्देश्य सामान्य कल्याण के उद्देश्य से विधिक व्यवस्था के लिए जीवनकाल तय करने वाली सार्वजनिक नीति पर आधारित है। उनका उद्देश्य यह देखना है कि पार्टियाँ टाल-मटोल की रणनीति का सहारा न लें बल्कि अपने विधिक अधिकारों का तुरंत लाभ उठाएँ। सैल्मंड ने अपने न्यायशास्त्र में कहा है कि कानून सतर्क लोगों की सहायता के लिए हैं, न कि सुप्त रहने वालों की।"

परिसीमा का कानून एक मूल कानून है, अपील एक समय सीमा के भीतर दायर की

जानी है। सीमा अवधि के भीतर अपील दायर करना नियम है और देरी की माफ़ी एक अपवाद है। इस प्रकार, देरी को माफ करते समय, अदालतों को सतर्क रहना चाहिए और केवल वास्तविक कारणों पर ही अदालतों को देरी को माफ करने का अधिकार है। देरी को माफ करने की विवेक की शक्ति का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से और कारण दर्ज करके किया जाना चाहिए। देरी माफ़ी के लिए दिए गए कारण स्पष्ट और ठोस होने चाहिए। इसलिए, देरी देरी की माफी का दावा एक अधिकार के रूप में और केवल वास्तविक कारणों पर नहीं किया क्रिया जा सकता है, देरी नियमित तरीके से होती है, न्यायालय न केवल सीमा के कानून को को कमजोर कर रही हैं बल्कि अनावश्यक रूप से इस तरह की चूक को प्रोत्साहित कर रही हैं। इसलिए, जो कारण सभी स्वीकार्य हैं, वे अकेले ही देरी को माफ करने का आधार होने चाहिए, और भारी देरी को माफ करने के उद्देश्य से फिल्मी, झूठे और आकस्मिक कारणों को नहीं लिया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने राजस्थान सरकार बनाम राजेंद्र प्रसाद जैन आपराधिक अपील संख्या 360/2008 (एसएलपी (सीआरएल) संख्या 904/2007 से उत्पन्न) के निर्णय में कहा कि, "कारण हर निष्कर्ष की धड़कन है, और इसके बिना यह निर्जीव हो जाता है।" आदेशों में कारण बताना न्यायिक कार्यवाही का सार है। प्रत्येक वादी जो प्रार्थना के साथ न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है, वह ऐसे अनुरोध की स्वीकृति या अस्वीकृति के कारणों को जानने का पात्र है। मामले में दोनों पक्षों में से किसी एक को अपील का अधिकार अधिकार है और इसलिए, अपील के उपाय को सार्थक बनाने के लिए उनके लिए न्यायालय की की सुविचारित राय जानना आवश्यक है। यह वह तर्क है जो अंततः अंतिम निर्णय में परिणत होता है अपीलीय या अन्य उच्च न्यायालयों की जांच के अधीन। यह न केवल वांछनीय है, बल्कि कानून की सुसंगत स्थिति को देखते हुए, न्यायालय के लिए इसके समर्थन में कारण दर्ज करते हुए आदेश पारित करना अनिवार्य है, भले ही वे संक्षिप्त क्यों न हों। तर्क में संक्षिप्तता को विधिक भाषा में कारणों की अनुपस्थिति के रूप में नहीं समझा समझा जा सकता है। हालाँकि न्यायिक आदेशों के समर्थन में कोई भी तर्क अस्वीकार्य नहीं है, संक्षिप्त तर्क कम से कम अंतवर्ती चरणों में न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त होगा और अपील के उपाय को उद्देश्यपूर्ण और सार्थक बना देगा। यह विधिक न्यायशास्त्र का एक स्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय विवेकाधीन शक्तियों के साथ निहित

हैं, लेकिन ऐसी शक्तियों का प्रयोग विवेकपूर्ण, न्यायसंगत और कानून के स्थापित सिद्धांतों के अनुरूप किया जाना चाहिए। इस तरह के न्यायिक विवेक का प्रयोग स्वीकृत मानदंडों के अनुसार किया गया है या नहीं, यह केवल उच्च न्यायालय के समक्ष लागू आदेश में दर्ज कारणों से ही प्रतिबिंबित हो सकता है। अक्सर यह कहा जाता है कि तर्क की अनुपस्थिति वास्तव में न्यायिक विवेक के सनकी प्रयोग का संकेत दे सकती है।

बसवराज और अन्य बनाम भूमि अधिग्रहण अधिनियम (सिविल अपील संख्या 6974-75/2013) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह देखा और माना गया है कि देरी को माफ करने के विवेक का उपयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए। आगे यह देखा गया है कि यदि पक्षकार की लापरवाही, निष्क्रियता या प्रामाणिकता की कमी को जिम्मेदार ठहराया जाता है तो अभिव्यक्ति "पर्याप्त कारण" की उदारतापूर्वक व्याख्या नहीं की जा सकती है। आगे यह देखा गया है कि भले ही सीमा किसी पक्षकार के अधिकारों को कठोरता से प्रभावित कर सकती है, लेकिन क़ानून द्वारा निर्धारित होने पर इसे पूरी कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए। यह भी देखा गया है कि क्या किसी पक्ष ने लापरवाही बरती है। प्रामाणिकता का अभाव है या निष्क्रियता है तो शर्तें लगाकर भी देरी को माफ करने का कोई उचित आधार नहीं हो सकता। यह देखा गया है कि देरी माफ़ी के प्रत्येक आवेदन पर इस न्यायालय द्वारा निर्धारित ढांचे के भीतर निर्णय लिया जाना चाहिए। आगे यह देखा गया है कि यदि न्यायालय देरी को माफ करना शुरू कर देती हैं, जहां कोई पर्याप्त कारण नहीं बनता है, तो शर्तें लगाकर यह वैधानिक सिद्धांतों का उल्लंघन होगा और विधायिका के प्रति घोर उपेक्षा होगी।

पुंडलिक जालम पाटिल (सुप्रा.) के मामले में, इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया कि न्यायालय समानता के आधार पर विलंबित और पुराने दावों की जांच नहीं कर सकता है। विलंब समता को पराजित करता है। न्यायालय उन लोगों की मदद करती हैं जो सतर्क हैं "अपने अधिकारों के प्रति सोते नहीं हैं"।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने पटना उच्च न्यायालय बनाम मदन मोहन प्रसाद और अन्य 2011(9) की, एससीसी 65 में प्रकाशित मामले में ऐसा माना है**:-**

"...जब कोई याचिका दायर की जाती है और सीमा की अवधि निर्धारित की जाती है,

है, और जब इसके साथ देरी की माफी के लिए आवेदन किया जाता है, तो अदालत को प्रत्यर्थी को नोटिस दिए बिना देरी को माफ नहीं करना चाहिए...।"

इस न्यायालय की सुविचारित राय में अपीलीय न्यायालय की ओर से वादी/अपीलार्थी को नोटिस दिए बिना और उसे सुने बिना 10 वर्ष और 8 माह की देरी को माफ करके समयबाधित आवेदन को स्वीकार करना गलत था। यदि कोई अपील समय से परे प्रस्तुत की गई है, तो वादी/डिक्री धारक ने एक अधिकार प्राप्त कर लिया है और यह कानून का एक प्राथमिक प्रस्ताव है कि कोई अदालत किसी पक्ष को उसकी बात सुने बिना अधिकार से वंचित नहीं कर सकती है। इसलिए, इस न्यायालय की राय में, अपीलीय न्यायालय के लिए माफ़ी आवेदन स्वीकार न करना बल्कि उसे लंबित रखना और जारी करना उचित प्रक्रिया है दूसरे पक्ष को यह बताने के लिए नोटिस देना कि देरी को माफ क्यों नहीं किया जाना चाहिए।

इस मामले में वादी को बिना सूचना दिए 10 वर्ष 8 माह की देरी माफ कर दी गई है। विलंब माफ़ी के मामले में वादी अपनी बात नहीं रख सका। यह कानून के सिद्धांतों में से एक है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत देरी को माफ करने के मामले में देरी को माफ करने की शक्ति हमेशा न्यायालय में होती है, लेकिन अपीलीय अदालत के निष्कर्ष पर पहुंचने पर उस शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है और यह इस आशय का निष्कर्ष दर्ज करता है कि हलफनामे और आवेदन में उल्लिखित तथ्य और परिस्थितियों के तहत, आवेदक ने देरी के लिए संतोषजनक कारण सिद्ध और स्थापित किया है और देरी की व्याख्या की है। ऐसा प्रतीत होता है कि देरी को माफ करने के क्रम में ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है।

पुंडलिक जालम पाटिल (सुप्रा.) के मामले में, इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया कि अदालत समानता के आधार पर विलंबित और पुराने दावों की जांच नहीं कर सकती है। विलंब समता को पराजित करता है। न्यायालय उन लोगों की मदद करते हैं जो सतर्क हैं और "अपने अधिकारों को लेकर सोते नहीं रहते हैं"।

रिकॉर्ड को देखने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अपीलीय अदालत ने प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 द्वारा परिसीमा अधिनियम की धारा 5 और सीपीसी की धारा 96 के तहत दायर आवेदनों को अपीलार्थीगण को सुनवाई का कोई भी अवसर दिए बिना मंजूरी दिए

स्वीकार करके प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया है।

आदेश 41, नियम 31 सीपीसी अपील पर निर्णय लेने की प्रक्रिया से संबंधित है, इसमें कहा गया है कि अपीलीय न्यायालय के निर्णय में कहा जाएगा:-

(क) निर्धारण के बिंदु, उस पर निर्णय;

(ख) उस पर निर्णय के और

(ग) निर्णय के कारण; और

(घ) जहां डिक्री अपील उलट गई या बदल गई, वहां अपीलार्थी जिस राहत का पात्र है;

यहां मौजूदा मामले में, प्रथम दृष्टया, यह स्पष्ट है कि कानून के अनुसार अपील पर निर्णय लेने के बजाय, आदेश 41 नियम 31 सीपीसी में निहित अनिवार्य प्रावधान को अपीलीय न्यायालय द्वारा नजरअंदाज कर दिया गया है और अपीलीय न्यायालय ने अपील का निर्णय इस प्रकार किया जैसे कि यह आदेश 39 नियम 1 और 2 सीपीसी के तहत अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक आवेदन पर निर्णय था।

उपरोक्त कारणों से, मामले पर पुनः विचार की आवश्यकता है।

यहां ऊपर दर्ज किए गए कारणों को ध्यान में रखते हुए, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, खेतड़ी द्वारा सिविल नियमित अपील संख्या 13/2004 में पारित दिनांक 27.10.2005 के आक्षेपित निर्णय को अपास्त कर दिया गया है। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 और सीपीसी की धारा 96 के तहत दायर दोनों आवेदनों के नोटिस वादी पक्ष को देने और दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद मामले को अपील पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए अपीलीय अदालत को भेज दिया जाता है। अपीलीय अदालत को दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद प्रस्तुत सभी प्रासंगिक दस्तावेजों पर विचार करने का निर्देश दिया गया है।

पक्षों को 01.07.2022 को अपीलीय अदालत के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

चूंकि मामला वर्ष 1984 से संबंधित है, इसलिए अपीलीय अदालत को इस आदेश की

प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से 90 दिनों के भीतर मामले को जल्द से जल्द तय करने का निर्देश दिया जाता है।

अपीलीय अदालत को लंबित मामले के दौरान हुए बाद के घटनाक्रमों पर ध्यान देने का निर्देश दिया गया है।

इस अपील का उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, निपटारा किया जाता है।

स्थगन आवेदन और सभी लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का भी निपटारा कर दिया गया है।

(अनूप कुमार ढंड़), न्यायमूर्ति

PRAVESH/2

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।